सैय्यिदुल उलमा के ख़ुतबे (1)

मक़्सदे हुसैन (अ0)

(वह तक़रीर जो सातवीं मुहर्रम 1360हि0 में ऑल इण्डिया रेडियो स्टेशन लखनऊ से प्रसारित हुई)

फूलों की सेज पर आराम की नींद सोना आसान है मगर काँटों पर बिस्तर लगाए रखना बहुत मुश्किल है। ख़ुशी को हर एक की तबीअत ढूँढती है मगर ग़म के साथ निभाना बहुत मुश्किल है। हाथ में लगी हुई फाँस जब तक निकल न जाए चैन नहीं आता। फिर दिल में चुभे हुए काँटे को सीने से लगाए रखना कहाँ मुमकिन है। इसी से आप समझ सकते हैं कि कर्बला का वाक़िआ बस एक दर्द भरी कहानी नहीं था बल्कि इसमें इन्सानी ज़िन्दगी के जरासीम छुपे थे इसलिए इन्सानों की दुनिया में इसका चर्चा होता और फैलता रहा।

इस वक़्त जबकि हम हुसैनअ0 के मक़सद को समझने और समझाने खड़े हुए हैं, दुनिया के बहुत से हिस्सों में हुसैनअ0 का ग़म सुनाया जा रहा है और 61हि0 में कर्बला की सरज़मीन पर जो कुर्बानी दी गई है उसे आज बारह सौ निन्नान्वे साल हो चुके हैं और एक साल के बाद 1361हि0 का मुहर्रम आएगा जिसमें पूरे तेरह सौ साल हो जाएंगे और इसलिए उस मौक़े पर दुनिया के बहुत से हिस्सों में एक बहुत बड़ी यादगार मनाने का इन्तिज़ाम हो रहा है।

इस तेरह सौ साल लम्बे ज़माने ने कितनी करवटें लीं। आँधियाँ चलीं और निकल गईं, सैलाब आए और गुज़र गए मगर हुसैनअ0 की याद ज़िन्दा रही और आज भी ज़िन्दा है। मालूम होता है कि हुसैनअ0 के नाम और उनके काम ने इन्सानियत के दिल में अपनी जगह बना ली। होंटों पर हुसैनअ0 का नाम, दिल में हुसैनअ0 की याद और दिमाग़ को हुसैनी मक़सद की तलाश है। ये शख़्सी और ज़ाती मक़सद नहीं है। अगर ऐसा होता तो किसी को क्या पड़ी थी कि ज़िन्दगी उसके याद में लगाए रखे। किसी मुसीबत के सताए हुए को देख कर निगाह फिर जाना या दिल में हमदर्दी से कसक पैदा होना एक वक़्ती चीज़ है मगर उसे मुस्तक़िल हैसियत नहीं मिल सकती, हुसैनअ0 का मक़सद इन्सानियत से जुड़ा था और इज्तेमाओ हैसियत रखता था इसलिए इन्सानियत ने अपना दिल चीर कर इस याद को महफ़ूज़ कर लिया।

अब आप चाहते होंगे कि मैं इस मक़सद को खुले लफ़्ज़ों में बयान कर दूँ। अच्छा सुनिये! मगर आपको मेरे साथ थोड़ी दूर तक चलना पड़ेगा।

आपको यह तो मालूम होगा कि हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा ने समाजियात और ज़िन्दगी के तौर तरीक़ों में एक इन्क़ेलाब का पैग़ाम पहुँचाया जिसका नाम था इस्लाम। इस्लाम ने ज़िन्दगी के हर हिस्से में बहुत अहम बदलाव किये और सबसे बढ़कर यह कि इन्सानियत को भाईचारगी और बराबरी का सबक़ पढ़ाया। वह हदें और फासले जो इन्सानों में क़ायम हो गए थे जिनसे ख़ुदा की मख़लूक़ ऊँचे और नीचे दो दर्जों में बंट गई थी। इस्लाम ने उन सभी हदों और फ़ासलों को ख़त्म कर दिया और तमाम आदमियों को एक अकेले ख़ुदा की इबादत की दावत दी।

कौन नहीं जानता कि दुनिया में "ताक़त हक़ है" का कलमा हमेशा पढ़ा गया और इन्तेहा है कि आज जब कि दुनिया कल्चर में बड़े ऊँचे दर्जे पर बतलाई जाती है। आज भी ताक़त ही का बोलबाला हो रहा है और उसी का नतीजा है कि इन्सानियत के परख़्चे उड़ रहे हैं और इन्सानियत के दामन की धज्जियाँ हवा में तितर–बितर दिखाई देती हैं।

अरब में शुऊबियत यानी क़ौम या नस्ल के फ़र्क़ का ख़याल बहुत ज़्यादा था। वह अपने सामने दूसरों (ग़ैर अरब) को बहुत ही नीच समझते थे और ख़ुद आपस में क़ानूनी अहकाम, और फ़ौजदारी की क़ानून व ताज़ीरात तक में बड़े और छोटे का फ़र्क़ बना लिया था। सस्ती जानें तौल में उनके बराबर नहीं समझी जाती थीं। उनमें माल व दौलत, क़ौम व क़बीलों की ज़्यादती ख़ानदानी बरतरी और सरदारी वह चीज़ें थीं जो इज़्ज़त की पहचान बना ली गईं थीं और जो लोग इन चीज़ों से महरूम थे उनके साथ जानवरों जैसा सुलूक किया जाता था।

यह ताक़त की पूजा हज़ारों तरह के एक साथ किये जाने वाले गुनाहों की बुनियाद थी और बहुत सी ख़राबियों के सोते उसी चश्मे से फूट रहे थे।

हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा[स0] ने आकर पहली ही बार में इन हदों और फ़ासलों को ख़त्म किया और बड़ाई का एक नया रूप दुनिया के सामने पेश किया। उन्होंने कहा कि आदमी सब एक हैं, फ़र्क़ तो इन्सानी ज़िम्मेदारियों के अदा करने में है, जो इन ज़िम्मेदारियों को सबसे ज़्यादा अदा करता है वही सबसे बड़ा आदमी है। यह कोई मामूली बात नहीं थी। इससे उन तमाम लोगों की हुकूमत और ताक़त को गहरी चोट पहुँची जो इज़्ज़त व हुकूमत के बटवारे में पहले काफ़ी हिस्सा रखते थे। उन्होंने डट कर इस्लाम का मुक़ाबला किया और पैग़म्बर[स0] को उनके हाथों बड़ी तकलीफें उठानी पड़ीं। इस बारे में बद्र, ओहद और ख़न्दक़ की लड़ाईयाँ मशहूर हैं और यह याद रखने की बात है कि इन लड़ाईयों में रसूल[स0] के मुक़ाबले में बनी उमय्या का लीडर अबूसुफ़ियान आगे–आगे था। पैग़म्बर[स0] की जीत हुई और यह लोग नाकाम हुए आख़िर में उनको हथियार डाल देना पड़े और हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा[स0] के सामने सर झुका देना पड़ा।

पैग़म्बर[स0] के ज़माने में किसी को यह मौक़ा नहीं मिल सकता था कि वह इस्लाम के उसूल में कोई बदलाव कर सके। आप अपने मिशन के बड़ी सख़्ती के साथ ख़ुद पाबन्द भी थे और दूसरों को पाबन्द बनाते भी थे। उस वक़्त जब अरब की सारे क़बीलों की तरफ़ से रुपया खिंच–खिंच कर आपके पास आता था और हज़ारों आदमी आपका हुक्म मानना फ़ख़्र समझते थे उस वक़्त भी आपने फ़क़ीरों के साथ उठना बैठना, फटे पुराने कपड़े पहनना और मिलने वालों से बराबरी का सुलूक करना नहीं छोड़ा। आपने अपनी मस्जिद का मोअज़्ज़िन एक हब्शी को बनाया था जिसे अरब वाले बहुत नीची निगाह से देखते थे मगर रसूल[स0] ने उसको बड़ी इज़्ज़त दे रखी थी। आपने अपनी फूफीज़ाद बहन की शादी एक आज़ाद किये हुए गुलाम के साथ कर दी, फिर एक वक़्त आया कि आपने उसी गुलाम के लड़के को बड़े ऊँचे ख़ानदान वाले अरबों का सरदार बना दिया, इस पर लोग बहुत नाराज़ हुए मगर आपने एक न सुनी और अपनी बात पर डटे रहे जिन लोगों की आप बड़ी तारीफ़ करते थे और बहुत इज़्ज़त करते थे उनमें बहुत से ग़रीब, कमज़ोर और परदेसी लोग थे। सलमान फ़ारसी जो ईरान के रहने वाले थे रसूल[स0] के साथ इतनी खुसूसियत रखते थे जो किसी दूसरे को मुश्किल से हासिल थी। यह सब इसलिए था कि ज़हन में बदलाव आए और इन्सानियत सोने

चाँदी के गंगा–जमुनी फंदे और ज़न्जीरों की क़ैद से आज़ाद हो।

अफसोस कि पैग़म्बर की ज़िन्दगी ने ज़्यादा साथ न दिया और आप दुनिया से चले गये। आपका मिशन इस हैसियत से पूरा हो गया था कि आप ने उसका नमूना दुनिया के सामने पेश कर दिया और कुछ लोग अमली तौर से उसके पाबन्द हो गए मगर आपको मालूम है कि ज़्यादातर लोगों के ज़हन का बदलाव और उस बदलाव के पक्के होने के लिए बड़ा वक़्त चाहिए होता है।

रसूल[स0] के बाद अभी थोड़े दिन गुज़रे थे कि बनी उमय्या की हुकूमत की बुनियाद पड़ गई। शुरु–शुरु में सिर्फ एक सूबे के गवर्नर की हैसियत से थी मगर धीरे–धीरे इसके असरात में तरक़्क़ी होती गई।

शाम में इस ख़ानदान की हुकूमत उस जमाअत के सहारे से थी जो हमेशा पैग़म्बरे इस्लाम[स0] से लड़ती रही थी और आख़िर में बेबसी की हालत में सर झुकाने पर मजबूर हुई थी।

इसका फैसला हर शख़्स कर सकता है कि अपनी हुकूमत हो जाने के बाद इस जमाअत के इरादे क्या होने चाहिए। मामूली दिल व दिमाग़ भी कहेगा कि उन्हीं हदों और फ़र्क़ों को वापस लाना जिन्हें पैग़म्बरे इस्लाम[स0] ने मिटा दिया था और उस जमाअत की हुकूमत और बादशाही पर जिसका बहुत गहरा असर पड़ा था। मगर चूँकि उस जमाअत की हुकूमत अब इस्लाम के साये में इस्लाम की नुमाइन्दगी में हासिल हुई थी इसलिए ज़रूरत थी कि यह उस पर्दे ही में अपने इरादों को पूरा करें और यह उससे ज़्यादा ख़तरनाक था कि खुलकर एक दुश्मन की हैसियत से अपने इरादों का एलान कर देते।

समझने वालों ने समझा कि इस्लाम की सादगी और इस्लाम की बराबरी के बजाए हुकूमत और बादशाहत की शान पैदा हो रही है और दौलतमंदी की बुनियाद पड़ रही है, इस पर एहतेजाज भी हुआ और एहतेजाज का नतीजा था अबूज़रे ग़फ़्फ़ारी[रज़ि0] को मुल्क निकाला दिया जाना, रब्ज़ा के जंगल में भेजा जाना और रसूल के इस सहाबी का अकेले दम तोड़ना और दुनिया से कूच कर जाना। यह शुरुआत है उस जंग की जो कर्बला में पूरी हुई।

ज़माने में एक करवट ऐसी बदली कि इस्लाम की सरदारी हज़रत अली[अ0] को मिली आपको सियासी हुकूमत हासिल होना उस सादगी और बराबरी के उसूल को नये सिरे से लागू किया जाना था जो रसूले इस्लाम[स0] ने बनाया था, इसीलिए मुख़ालिफ़ जमाअत ने बग़ावत की और ताबड़तोड़ हंगामों और लड़ाईयों में आपको ऐसा उलझा दिया गया कि आप उन मक़सद को पूरा न कर सके जो आपके सामने थे। आख़िर मस्जिद में अली[अ0] का सर तलवार से दो टुकड़े हो गया और इस्लामी बराबरी का मिशन चलाने वाला दुनिया से चल बसा।

आपके बेटे हज़रत हसन[अ0] को वह ज़माना मिला जब शाम की हुकूमत को बड़ी ताक़त हासिल हो चुकी थी, आपको जंग के ज़रिये से कामयाबी की कोई सूरत न दिखाई दी तो सुल्ह करके मुख़ालिफ़ की जंगी कारवाईयों को उसूल के शिकंजे में क़ैद किया और आपने अपनी समझदारी से काम लेकर यह बड़ी शर्त रख दी कि शाम के हाकिम को अपने बाद किसी को अपना जानशीन और नाएब बनाने का हक़ न होगा बल्कि उसके बाद हुकूमत बनी हाशिम की तरफ़ वापस आएगी। यह ऐसी शर्त थी जिसने मुस्तक़बिल को किसी हद तक बचा लिया था मगर सियासत की दुनिया में सच्चाई और वादे की पाबन्दी तो कोई चीज़ नहीं। वादे किये जाते

हैं तोड़ने के लिए और मुआहदे लिखे जाते हैं रद्दी की टोकरी में फेंकने के लिए। वही हुआ जो इस तरह की सियासत में होना था। कैसी शर्तें और कहाँ का मुआहेदा। हज़रत इमाम हसन[अ०] की ज़िन्दगी आख़िरी मक़सदों में रुकावट बन रही थी। आपको चुपके से ज़हर देकर शहीद कर दिया गया। यह भी एक कुर्बानी थी जो इस्लामी तहज़ीब की कुर्बानगाह पर नज़र हो गई।

अब उन लोगों में जो इस्लामी तहज़ीब की हिफ़ाज़त करने वाले हो सकते थे, सिर्फ़ हुसैन[अ०] की हस्ती बाक़ी थी। ज़ाहिरी तौर पर अब आपको क़दम आगे बढ़ाने का कोई मौक़ा न था। वह पूरी जमाअत जिसको साथ लेकर शाम की ताक़त से मुक़ाबला किया जा सकता था इमाम हसन[अ०] की सुल्ह के बाद बिखर चुकी थी और अब उसका इकटठा होना मुमकिन न था। वक़्ती सियासत की ग़ैर इस्लामी चाल देखकर दम घुटता था मगर आप इन्तेज़ार कर रहे थे कि मुआविया अपने बाद के लिए क्या सूरत इख़्तियार करते हैं।

ये न समझना चाहिए कि इस बीच हक़ के पुजारी बिल्कुल चुप रहे। बल्कि इस सख़्त अन्धेरी रात और इसके सन्नाटे में कभी–कभी इधर–उधर से चीख़ की आवाज़ सुनाई दे जाती थी मगर वह आवाज़ उसी तरह दबा दी जाती थी जिस तरह आप सुनते हैं कि हिटलर अपने मुल्क में हर मुख़ालिफ़ आवाज़ को दबा देता है। अम्र हक़ ख़ज़ाई और हजर इब्ने अदी और उनके दस ग्यारह साथियों का अन्जाम तारीख़ में आपके सामने है। याद रखिये कि इन लोगों को शाम के हाकिम से कोई ख़ानदानी दुश्मनी नहीं थी। सिर्फ उसूल का इख़्तेलाफ़ था जिसने दुनिया की इस फैली फ़ज़ा में उनके लिए जगह बाक़ी न रखी।

हज़रत इमाम हुसैन[अ०] ने इन वाक़ेआत पर एहतेजाज ज़रूर किया मगर फिर भी आप देख रहे थे कि आख़िरी शर्त का क्या अन्जाम होता है?

अब वक़्त भी आ गया कि अमीरे मुआविया ने अपने बाद के लिए अपने बेटे यज़ीद को जानशीन बना दिया। यह उन बातों में से आख़िरी बात थी जिसे मुआहेदे की शर्तों में महफ़ूज़ किया गया था।

यज़ीद के काम भी ऐसे थे जो इस्लाम के अहकाम से खुल्लमखुल्ला बग़ावत की तरह थे। इमाम हुसैन[अ०] ने इसको सख़्ती के साथ महसूस किया।

मुआविया भी समझते थे कि इस मामले में सबसे ज़्यादा जुड़ी हुई हस्ती हुसैन[अ०] की है। इसलिए उन्होंने कोशिश की कि आपको मिला लिया जाए मगर यह कोशिश नाकाम हुई। इमाम हुसैन[अ०] ने साफ़ कह दिया कि मैं इस कारवाई से इत्तेफ़ाक़ नहीं कर सकता। अमीर मुआविया का इन्तेक़ाल हो गया और यज़ीद तख़्ते हुकूमत पर बैठा तो उसके सामने सबसे पहले यही मसअला था कि हुसैन से बैअत हासिल की जाए। उसने मदीने के गवर्नर को लिखा कि हुसैन[अ०] से बैअत लो नहीं तो उनको क़त्ल कर दो। यह सख़्ती का पहला ही क़दम था जो हुसैन[अ०] के ख़िलाफ़ उठाया गया। हुसैन[अ०] इसके लिए बिल्कुल तैयार न थे। उन्होंने कहा कि मेरी जान जाए मुझे गवारा है मगर मैं इस हुकूमत के सामने सर नहीं झुकाऊँगा।

ये वह वक़्त था जब एहसास बिल्कुल मर चुके थे। फ़ज़ा में बिल्कुल सन्नाटा था। जिन लोगों से मुख़ालिफ़त का अन्देशा हो सकता था उनमें कुछ का गला घोंटा जा चुका था और कुछ के ज़मीर ख़रीद कर उनकी ज़बानों को बन्द कर दिया गया था। सुनहरी तलवार की झन्कार और रुपये और अशरफ़ी की खनक ने बड़े बड़ों के दिल अपनी तरफ़ झुका लिए गये थे। उस वक़्त हुसैन[अ०] इस आख़री इक़दाम के लिए तैयार हो रहे थे जो बनी उमैय्या के ज़ुल्मो सितम के महल

को ज़मीन पर गिरा दे।

इमाम हुसैन[अ०] के लिए यह नामुमकिन था कि वह ताक़त का मुक़ाबला ताक़त से करते। उन्होंने जंग का एक नया तरीक़ा निकाला जो उनसे पहले दुनिया ने नहीं देखा था। वही उनके मक़सद के लिए फ़ायदे वाला और कारगर भी था। आप अच्छी तरह जानते थे कि मुसलमानों की आँखों पर पर्दे पड़ गये हैं। उनके ज़हन जम चुके हैं उनके एहसास ठण्डे पड़ गये हैं उनमें यह समझ बाक़ी न रही कि बनी उमय्या के काम और बातें इस्लामी तरीक़े के ख़िलाफ़ हैं।

इसकी बड़ी वजह इस्लाम के नाम का वह पर्दा जो उनके चेहरों पर पड़ा हुआ है। हुसैन[अ०] चाहते थे कि उन्हें एक ऐसा सख़्त छींटा दें कि उनके एहसास होश में आ जाएं। और चेहरे का पर्दा हट जाए। उसकी असली बनावट सामने आ जाए और दुनिया देख ले कि इस बादशाही सियासत के आख़री क़दम कहाँ तक जा सकते हैं।

उन्होंने इसके लिए फौज और लश्कर इकटठा नहीं किया। उन्होंने वह इबादतगुज़ार और मुत्तक़ी लोग ढूँढे जिनमें का हर शख़्स अपने अख़्लाक़ व ख़ूबियों में सच्चे इस्लाम का नुमाइन्दा था और मुल्क में जिसकी सच्चाई और ईमानदारी को हर शख़्स मानता था। उन्होंने रसूल[स०] के ख़ानदान के जवान और बच्चे यहाँ तक कि दूध पीते बच्चे को अपने साथ ले लिया और रसूल[स०] के घराने की पाकदामन औरतें –जिनमें ख़ास रसूल[स०] की हक़ीक़ी नवासियाँ मौजूद थीं– अपने साथ लीं। हुसैन[अ०] ने अपने दुश्मन की फितरत को ख़ूब पहचान लिया था। वह उसके सख़्ती के इमकान को बढ़ा रहे थे। दुनिया ने देख लिया कि हुसैन[अ०] ने जो सामान अपने साथ लिया था वह सब हुसैनी मक़सद को पूरा करने में लगा।

बूढ़े, जवान और बच्चे क़त्ल हो गए। दुश्मन के ज़ुल्म का आख़िरी तीर बाक़ी था। हुसैन[अ०] ने उसके लिए निशाना ढूँढ दिया, रबाब की गोद से छः माह का बच्चा ले लिया। सबसे आख़िर में अपनी गर्दन को भी पेश कर दिया और अपने बाद शहज़ादियों को क़ैद होने के लिए छोड़ा।

यह सब हुआ और समझ बूझकर हुआ। हुसैन[अ०] अपने मक़सद में कामयाब हुए। मुसलमानों की आँखें खुल गईं और यज़ीदियत और इस्लाम दो अलग–अलग चीज़ें हो गईं। हुसैन[अ०] का मक़सद भी बस यही था। वह चाहते थे कि इस्लामी कल्चर पर जो उमवी बादशाहत का रंग चढ़ रहा है जिससे उसकी हदें और फ़ास्ले मिटते जा रहे हैं, यह रंग उतर जाए। दुनिया यह समझ ले कि इस्लामी कल्चर वह नही है जो दमिश्क़ के शाही महल में नज़र आता है, जहाँ शराब के जाम चल रहे हैं और ख़ूबसूरत चेहरों का झुरमुट लगा है, जहाँ तमाम लोगों से दौलत समेटी जाती है और वह ख़लीफ़ा की रंगरलियों पर ख़र्च होती है, जहाँ ऐश व आराम की भीड़ में ग़रीबों की आवाज़े सुनी नहीं जाती और जहाँ इन्साफ को कुन्द (बिना धार की) छुरी से हलाल किया जाता है। हुसैन[अ०] ने दिखलाया कि इस्लाम का कल्चर वह है जिसे कर्बला के मैदान में पेश कर दिया गया, जहाँ एक हबशी गुलाम भी ज़ख़्मी होकर घोड़े से गिरता है और इमाम[अ०] को आवाज़ देता है तो इमाम[अ०] उसके सरहाने जाते हैं और सर उठाकर गोद में रखते हैं। गुलाम की रूह आक़ा की गोद में जिस्म से जुदा होती है।

यज़ीदी ताक़तें दुनिया में बहुत पैदा हो सकती हैं और हर क़ौम में पैदा होती हैं मगर हुसैनी मिशन जो कर्बला की ज़मीन पर पूरा हुआ वह हर ज़माने में यज़ीदियत की हार के लिए काफ़ी है, लेकिन शर्त यह है कि हुसैन[अ०] के कारनामों को दुनिया याद रखे और उससे सबक़ हासिल करे।